REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

हिन्दी कविता के बदलते सरोकार

डॉ. भारत भूषण
अध्यक्ष , स्नात्तकोतर हिन्दी विभाग , गुरु नानक कालेज, किल्लियांवाली,
श्री मुक्तसर साहिब.

प्रस्तावना :

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है जिससे जीवन को गति मिलती है। 21वीं सदी के कविगण ने इस परिवर्तन को अपने साहित्य में रेखांकित किया है। जिसके फलस्वरुप कविता आसमान की वायवी कल्पनाओं की उड़ान छोड़कर जमीन के यथार्थ धरातल पर चलने लगी। कविता अपने पुराने रुप को त्याग कर एक रुप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। कवि अपने युग परिवेश की यथार्थ परिस्थितियों का आत्मानुभव करते हुए अपनी प्रतिभा के बल पर कविता का निर्माण करता है। 21वीं सदी की कविता अपने बहुरुप में हमारे सामने आयी है, उसने मन को बहलाया भी और जहां–जहां मन की भयावहता और विसंगतियां हैं, वहां कविता ही उसके विरोध में तनकर खड़ी भी हुई है। डॉ. प्रीतम सिंह बगरेचा कहते हैं कि –''युग और जीवन बदला तो कविता क्यों न बदलेगी ? आज जीवन के खण्डित निर्माण को अपने में उभार रही है। जीवन में राग नही तो उसमें राग कहां से आये ? जीवन क्रमहीन और बेतरतीब है, तो उसमें व्यवस्था कैसे हो ? जीवन क्षणों में जीया जा रहा है, तो कविता में शाश्वतता कैसे आये ?''[1]

आज जीवन रोटी के लिए छटपटा रहा है। तब इन कवियों को प्यार बेमानी सा प्रतीत होता है। कवि 'अरुण कमल' अपनी कविता 'यह वो समय' में कहते हैं कि –

''यह वो समय है जब
शेष हो चुका है पुराना
और नया आने को शेष है।''[2]

रोटी, कपड़ा और मकान प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिक जरुरतें मानी जाती है। आज मंहगाई और भ्रष्टाचार अपने चरम पर है। प्राचीन समय की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना आज लुप्त होती जा रही है। ऐसे समय में मनुष्य को अपनी गृहस्थी पालने के लिए दूसरे देश जाना पड़ता है। अपने परिवार से दूर गये व्यक्ति को सदा अपने घर की याद सताती रहती है। वह खोजता है –

''कहां है वह घर
जहां हम वापस जाना चाहते हैं।''[3]

''जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न आवास समस्या ने एकल परिवार को बढ़ावा दिया है, जिसके कारण रिश्तों में गरमाहट दिखाई नहीं देती जो संयुक्त परिवार में पाई जाती थी।'' मनुष्य के मन में सदा एक इतर दुनिया बसी हुई है। वह अपने परिवेश से कटता जा रहा है। जब वह घर से बाहर होता है तो उसके मन में सदा घर की याद सताती रहती है। शांति की तलाश में कवि कहता है कि –

''अब यही है उपाय कि हर दरवाजा
खटखटाओ
और पूछो
क्या यही है वो घर।''[5]

पेड़–पौधे भी मनुष्य के सच्चे साथी होते हैं जिनके साथ उनकी कई खट्टी–मीठी यादें जुड़ी होती हैं। अपने घर के आंगन में उगा वृक्ष

मनुष्य के घर का एक सदस्य बन जाता है। कवि कहता है –

''आंगन का पेड़ सुखाता लेवे के कपड़े
पक्षियों को पानी पिलाता आंगन का पेड़
कभी परिहत, कभी पालकी
कभी हेंगा, कभी हरकनी
गुल्ली–डण्डा खेलता आंगन का पेड़।''[6]

''आंगन के पेड़ के माध्यम से कवि ने जीवन और प्रकृति के सम्बन्धों को व्यक्त किया है। प्रकृति से प्राप्त साधन सामग्री का यहां के लोगों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।''[7] पुरानी पीढ़ी के लोग वृक्षों से इतना लगाव करते थे कि वह किसी भी हालत में उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। ऐसी स्थितियां ज्यादातर गांवों में पाई जाती है।

आज का कवि अपनी जमीन से जुड़ना चाहता है, क्योंकि उसने अच्छी तरह से समझ लिया है कि समूचा आकाश शून्य है, उसमें कुछ भी नहीं है। संवेदना ही कवि की सबसे वड़ी सम्पत्ति है, जिसके सहारे वह अपने परिवेश से जुड़ता है। कवि प्रकृति से इतना जुड़ चुके हैं, वह इन सबको छोड़कर कहीं भी जाना नहीं चाहता। आज गांव शहर में परिवर्तित होने की अन्धी दौड़ में अपने खुले मैदान खो बैठे हैं। इन कविताओं में शहरी जीवन से कोसों दूर वह गांव है, जहां के लोग अपनी छोटी सी दुनिया में बसे हैं। जहां आज भी मौजूद है –

''बच्चों के लिये मैदान
पशुओं के लिए हरी–हरी घास
बूढ़ों के लिए पहाड़ों की शान्ति।''[8]

''पहले संयुक्त परिवार थे, इसीलिए बड़े और खुले आंगन वाले घर होते थे। अब परिवार विघटित हो गये हैं। अब बहुमंजिला इमारतें बन गई हैं। आज उसी आंगन की जरुरत युवा पीढ़ी को महसूस नहीं होती।''[9] ये सब चीजें आज शहर से लुप्त होती जा रही हैं। बच्चों के खेलने कूदने के मैदान आज नहीं रहे। मैदान में घास न होने के कारण पशुओं को पालना भी मुश्किल हो गया है और मैदानों में हरियाली न होने से विश्व आज ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से जूझ रहा है। शहर की प्रदूषित हवा से कई नये रोग एवं बीमारियां पैदा हो रही हैं। शहर तो शहर गांवों को जहरीले धुऐं न बुरी तरह से ढक लिया है। कविता 'गांव में भी' कवि ज्ञानचन्द्र गुप्त कहते हैं कि –

'टूटे–फूटे रास्तों की धूल–धक्कड़ ने
भट्टे की चिमनी के उगलते धुएँ ने
पेड़ों के पत्तों की हरीतिमा को बुरी तरह ढक लिया।''[10]

विकास के नाम पर आज धरती पर से कई पेड़–पौधों को बेवजह काटा जा रहा है और वहां पर बड़ी–बड़ी इमारतें खड़ी की जा रही हैं। रोजाना कुछ न कुछ बदलाव आता रहता है।

''उखड़ गये हैं बड़े–बड़े पुराने पेड़
और कंक्रीट के पसरते जंगल में
खो गयी है इसकी पहचान।''[11]

प्रकृति में मानव जीवन को बचाए रखने के लिए पेड़–पौधों का होना आवश्यक है, परन्तु ''महानगरों में रहने वाले कवियों का ध्यान प्रकृति और उसके सौन्दर्य की तरफ नहीं जाता। इसका मुख्य कारण है कंक्रीट के जंगलों में प्राकृतिक सौन्दर्य गमलों तक सीमित रह गया है।''[12]

दिन–प्रतिदिन बढ़ते प्रदूषण की मात्रा से पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ रहा है, जिसका भुगतान भोले–भाले पशु–पक्षियों को करना पड़ रहा है। चिड़ियां, कौए और गीध जैसे पक्षियों की प्रजातियां विलुप्त होन की कगार पर हैं। 'तड़ित कुमार' अपनी कविता 'घोंसला' में इस चिन्ता को व्यक्त करते हैं –

आज भी
सोचता हूँ
चिडिएं
हमें छोड़ कर
क्यों चली गयी ?
कहां गायब हो गई ? आजकल
गिद्ध भी तो
कम दिखाई पड़ते हैं। सुना है।''[13]

इंसानी जीवन की बुनियादी जरुरतों में हवा और पानी को शामिल करना किसी भी तरह से गलत नहीं होगा। लोगों को अगर भोजन नहीं मिले तो वे कुछ दिन जीवित रह सकते हैं लेकिन हवा के बिना कुछ क्षण काटना बेहद मुश्किल होगा। भारत में आजादी के बाद जो विकास की बयार चली उसमें पेड़ों की अंधा–धुंध कटाई से, अत्याधिक पानी के दोहन से, बड़े–बड़े कारखानों और कम्पनियों के कैमिकल्स नदियों में गिरने से और बढ़ते हुए वायु–प्रदूषण से पर्यावरण प्रदूषण हो गया। इस संकट की आड़ में बाजारवाद में चमक आ गई। शुद्ध पानी और वायु के संकट ने इस कारोबार को बढ़ा शुद्ध पानी और वायु मुहैया कराने वाली मशीनों का जैसे ए.सी., बोतल बंद पानी, फ्रिज और गीजर आदि। 'पंच तत्व' नामक कविता में कवियत्री ने इसी चिंता को प्रकट किया है –

'लेकिन
सुनो।
तुम्हारे सृजन का
पूंजीकरण हो गया है
जिस पर महल–प्रसाद है
वही जल इष्ट है
जो फ्रिज या गीजर से
निकलता है
वही हवा सुखद है
जो कंडीशनर की मोहताज है
वही तेज देदीप्यमान है
जो अर्थ सम्पन्न है।
तुमने
सोचा था कभी
कि
तुम्हारे पंच तत्वों का
उसकी चाकरी के लिए
शुद्धीकरण होगा ?''[14]

आज का युग संचार का युग है। संचार के इस युग में मनुष्य की भावनाओं का संचार खत्म हो रहा है। आज स्वार्थवृत्ति के कारण आपसी नजदीकियां दूरियों में परिवर्तित होती जा रही है। हमारे प्राचीन सांस्कृतिक बुनियादी मानव–मूल्यों का ह्रास हो रहा है। अहं और अकेलापन बढ़ रहा है, इंसान, इंसान से दूर होता जा रहा है। कवि 'परेश सिन्हा' की कविता 'हवा पागल हुई है' में कहते हैं कि –

''पिता की रीढ़ झुक जाती
कि भाई डगमगाता है,
जो उठती बात पैसों की
तो रिश्ता टूट जाता है।''[15]

आज रिश्तों की बुनियाद भावनागत स्तर पर नहीं बल्कि आर्थिक स्तर पर आंकी जाती है। ऐसी सभी चीजों से तंग आकर आज का कवि अपनी ही बेहतर दुनिया में जाना चाहता है। अब वह परिस्थितियों में बदलाव लाकर एक नई दुनिया का निर्माण करना चाहता है। घर से समय पर निकल कर भागना, दफ्तर पर समय पर पहुंचना ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य पर से उसका स्वयं का अधिकार हट रहा है। कवि ऐसी बेहतर दुनिया की चाह करता है –

''वहां कोई कैलेण्डर न होगा
न छुट्टियों का कोई हिसब
किसी की घड़ी से मुझे अपना वक्त न मिलाना होगा।''[16]

आज का युग और परिस्थितियां बदल गई हैं। वैश्वीकरण और बाजार परम्परा के चलते जीवन और परिस्थितियों में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। इन तमाम परिवर्तनो के बावजूद आज भी स्त्री को दोयम दर्जा प्राप्त है या तो वह देवी है जिसे मंदिरों में देवी बनाकर बैठाया गया है या फिर डायन जिसे पत्थर मार–मार कर मार डाला जाता है या फिर वह दान की वस्तु है, जिसका कन्यादान किया जाता है, 'बेटियां' कविता के माध्यम से लेखिका ने इसी संदर्भ को प्रस्तुत किया है –

बेटियों का दान कन्यादान
बस पिता अब और अत्याचार न
बेटियों को तुम्हीं वस्तु कहोगे
तो दान लेने वालों का ईमान क्या।''[17]

इसी कविता के माध्यम से लेखिका ने लड़कियों की प्रवासी भारतीयों से विवाह करने की समस्या का भी उल्लेख किया है। लेखिका ने इसे बेटियों की बलि माना है यथा –

''बेटियों की बलि दे सरहद पार
देश अर्जित करते हैं मुद्रा व्यापार
बेटियों के शांत चेहरों पर न जाओ
वे छिपा लेती है सब पीड़ा गुबारे।''[18]

इस प्रकार हिन्दी कविता अपने समय से सीधे साक्षात्कार करती हुई अपने आत्मानुभव से पाठक वर्ग को सचेत करती हुई उन्हें परिवर्तन का नयां संदेश देती है। इन सभी कविताओं में संवेदनशीलता, समाज सापेक्षता, वैयक्तिकता, परिवेशमयता, रिश्तों की बनावट के गहरे सरोकार मिलते हैं।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. प्रीतम सिंह बागरेचा –नये काव्य के बदलते स्वर, पृ. 8
2. सं. राधेश्याम तिवारी –पृथ्वी के पक्ष में, पृ. 15
3. डॉ. रंजना राजदान –इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता और ज़मीनी जुड़ाव, पृ. 77
4. डॉ. राधा वर्मा –समकालीन हिन्दी कविता के बदलते सरोकार, पृ. 16
5. सं. राधेश्याम तिवारी – पृथ्वी के पक्ष में, पृ. 183
6. कुमार कृष्ण –गांव का बीजगणित, पृ. 90
7. वही, पृ. 27
8. निर्मला पुतुल – नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 77
9. डॉ. रंजना राजदान –इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता और जमीनी जुडाव, पृ. 16
10. सं. राधेश्याम तिवारी –पृथ्वी के पक्ष में, पृ. 320
11. निर्मला पुतुल –नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 26
12. डॉ. गुरचरण सिंह –समकालीन कविता के सरोकार, पृ. 185
13. सं. राधेश्याम तिवारी –पृथ्वी के पक्ष में, पृ. 156
14. डॉ. मधु संधु –सतरंगे स्वपनों के शिखर, पृ. 32–33
15. सं. राधेश्याम तिवारी –पृथ्वी के पक्ष में, पृ. 241
16. वही, पृ. 292
17. डॉ. मधु संधु –सतरंगे स्वपनों के शिखर, पृ. 58
18. वही, पृ. 58

LBP PUBLICATION